अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वर्ष २१ जून - २०२१ प्रकाशन - ०६

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

जून २०२१
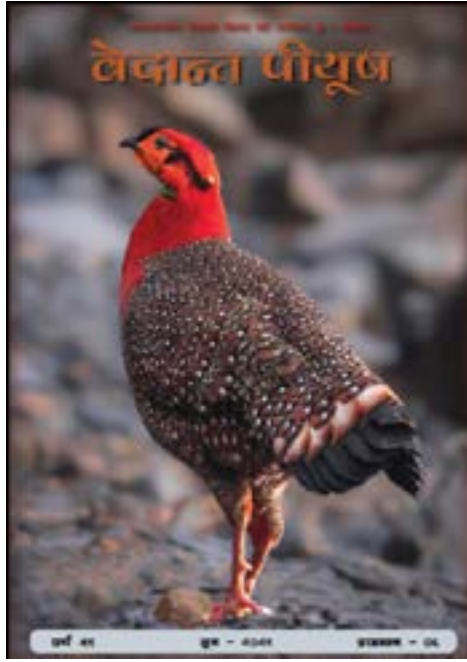
प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि
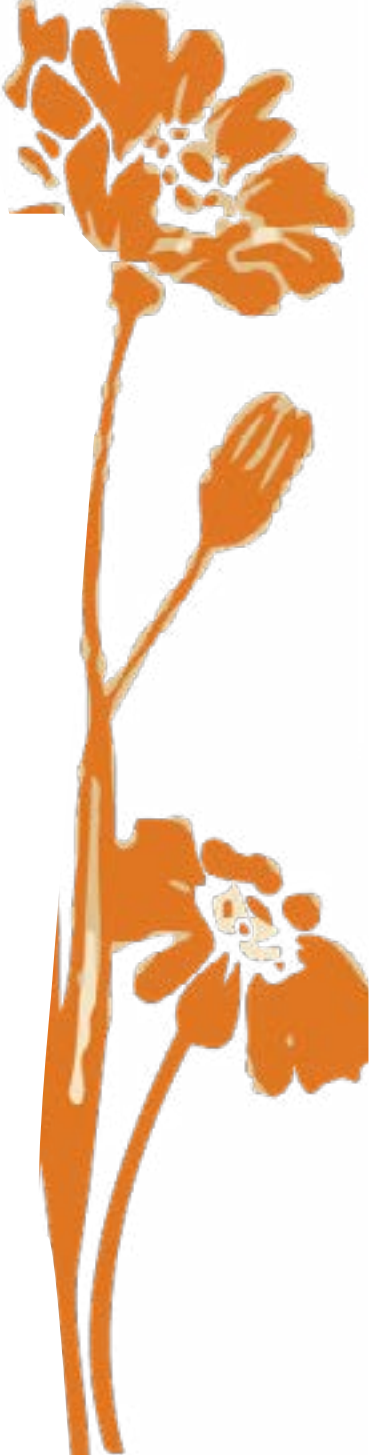
जून 2021

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुर साधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः।।

(शिवमहिम्नः स्तोत्रम्)

हे ईश्वर! जो कामदेव देवता, असुर, मनुष्य आदि पर सदैव विजयी रहे, उनके बाण कभी भी लक्ष्य का भेदन किए बगैर वापिस नहीं लौटे हैं। उन कामदेव ने आपको अन्य देवताओं की तरह एक साधारण देव समझा; परिणामस्वरूप वह स्मरण मात्र के लिए शेष रह गया। यह सर्वथा सत्य है कि आप जैसे जितेन्द्रिय का अनादर करना सदैव अहितकर होता है।

पूज्य गुरुजी का सन्देश

धीरज धर्म मित्र अरु नारी...

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपद काल परिखेहुं चारि! रामायण की यह चौपाई कहती है कि प्रतिकुल परिस्थिति को एक महान आशीर्वाद के रूप में जानें। क्योंकि यह जीवन के अनेकों विचित्र तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्यों को जानने में सहायक होता है। विषम परिस्थितियां हमें बहुत कुछ सीखाती है। तथा अपने धैर्य, धर्म के प्रति प्रतिबद्धता, अपने सच्चे और विश्वसनीय मित्र के बारे में तथा अत्यन्त निकट के पति-पत्नी आदि रूप सम्बन्धों की निकटता और गहराई को जानने में सहायक बनता है। जीवन के इन महत्वपूर्ण पहलू के बारे में यदि अपने अन्दर कोई मोहात्मक धारणा व भ्रम है, तो यह टूट जाता है और हम सच्चाई से अवगत होते है। यह प्रतिकुल समय हमारे लिए एक लिटमस टेस्ट सिद्ध होगा।

सब से प्रथम धैर्यरूप गुण है, जिसकी परीक्षा इन प्रतिकुल परिस्थितयों में होती है। धैर्य अर्थात् किसी भी प्रकार की बाधाओं के बावजूद हम किसी निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचने का उत्साह को त्यागते नहीं है। जिस प्रकार कहीं जाने के लिए नीकलने पर रास्ते में ट्राफिक जाम में फंस जाने पर; यदि लक्ष्य का महत्व जानते है तो जाने के संकल्प को नहीं छोडते है, किन्तु कुछ समय प्रतीक्षा करना सीखते है। धैर्यवान व्यक्ति को कोई भी बाधा लक्ष्य की सिद्धि के लिए रोक नहीं सकती है। हर लक्ष्य में बाधाएं होती है। किन्तु जो धैर्य से युक्त होता है, वही सफल मनुष्य होता है। उसके अभाव में व्यक्ति क्रोधादि के वशीभूत होकर तनावग्रस्त जीवन जीता है।

दूसरा है धर्म अर्थात् जीवन में कुछ सिद्धान्तों के प्रति हमारी प्रतिबद्धता है। धर्म एक बहुत ही व्यापक शब्द है। इसका तात्पर्य ईश्वर में विश्वास से युक्त होकर अपनी अच्छाई व सिद्धान्त के पालन में दृढ़ता होना है। इसमें आत्मबल और विश्वास का भी समावेश है। कुछ हद तक यह गुण अवश्य होता है। किन्तु क्या विश्वास और प्रतिबद्धता में इतनी दृढ़ता है कि हम प्रतिकुल समय में भी उसे न त्यागे - इसकी कसौटी होनी चाहिए।

तीसरा है मित्र, जिसे जीवन के प्रतिकुल क्षणों के दौरान स्पष्ट और सर्वोत्तमरूप से महसूस कर सकते है। ऐसे में यह दीखता है कि अधिकतर अनुकुल समय के लिए ही मित्र होते है। जिस समय प्रतिकुलता प्राप्त होती है, तो वे दूर हो जाते है और हमें अकेला छोड़ देते है। इस सत्य से हम अनभिज्ञ रहे तो यह हममें निराशा उत्पन्न करने का हेतु बनेगा। उसका कारण वह मित्र नहीं है, किन्तु हमारी उसके प्रति मिथ्या अपेक्षा है। इन तथाकथित मित्रों की सत्यनिष्ठा को परखने के लिए विषम परिस्थिति हमारे पास सर्वोत्कृष्ट साधन है।

अन्त में पति अथवा पत्नी; जो अत्यन्त करीबी सम्बन्ध होते है। जब आवश्यकता पडने पर वे हमें छोड देते हैं, तो यह जीवन के अत्यन्त दुःखद क्षण होते है। जिससे कि पूरी तरह टूट जाते हैं। रिश्तों का बहुत महत्व होता है, किन्तु आंख बन्द करके विश्वास कर लेना अथवा झूठी अपेक्षा से युक्त सम्बन्ध बनाना यह हमारी ही गलती का परिचायक है।

अतः विषम परिस्थिति में निराश और निरुत्साहित नहीं होते हुए उसके माध्यम से जीवन के महत्वपूर्ण पहलू के सत्य को जानकर उसमें जगना सीखें। यदि इसे हमें सीख लिया तो हम ऐसी परिस्थिति के लिए भी निश्चितरूप से ईश्वर का धन्यवाद करते हुए उनकी कृपा की वर्षा का माध्यम समझेंगे।

वेदान्त पीयूष

वेदान्त लेख

वैराग्य - स्वस्थ सम्बन्ध

वैराग्य – स्वस्थ सम्बन्ध

वैराग्य विवेक तथा उसकी परिपक्वता की अवस्था का सूचक है, जहां राग की अनावश्यकता हो गई। जैसे वृक्ष से आसक्त फल जब पक जाता है तो स्वतः उससे पृथक हो जाता है। यह बहुत सुन्दर, स्वस्थ और परिपक्व सम्बन्ध का सूचक है।

साधारणतः अज्ञान में विद्यमान व्यक्ति को ज्ञान, व्यवस्था, संरक्षणादि हेतु कहीं न कहीं आश्रित तथा राग से युक्त होना पडता है। अतः राग का भी महत्व होता है। अपने अस्तित्व के लिए माता-पितादिरूप व्यावहारिक सम्बन्ध, सामाजिक व्यवस्था, पंचमहाभूत, तथा उससे निर्मित जगत, देवतागण तथा ईश्वर आदि अनेकों दृष्ट और अदृष्ट पदार्थों पर आश्रित होना पडता है। अनेकों के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। अधिकतर यह देखा जाता है कि जहां राग होता है, उसका पर्यवसान आसक्ति, मोह तथा अन्ततः बुद्धिनाश में होता है। इस तरह सतत पतन की दिशा में यात्रा होती है। राग का पर्यवसान विकास की ओर होना या पतन की दिशा में उसके पीछे हेतु जीवनदर्शन, उसके लक्ष्य और स्वरूप में भेद है। जहां राग का आधार संसारी जीवनदर्शन होता है, वहीं पर पतन की ओर यात्रा होती है। किन्तु वेदान्त अर्थात् अध्यात्म जीवनदर्शन विरक्ति की ओर ले जाता है।

विरक्ति का आधार अध्यात्मदर्शन होता है। संसारीदर्शन अथवा भौतिकवाद में सुख-सफलता बाहर किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति से ही आता है। संसारी का साध्य वह बाह्य वस्तु आदि होने से उसका पर्यवसान पराधीनता में होता है। अध्यात्मदर्शन में तत्तद् वस्तु साधन रूपा होती है। उससे आशीर्वाद व अनुग्रह प्राप्त करके स्वस्वरूप में जाग्रति की दिशा में यात्रा की जाती है। हम स्वरूपतः परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप है। इसलिए स्वरूप में जग जाने पर समस्त पराधीनताओं से मुक्ति हो जाती है। किन्तु इस ज्ञान हेतु व्यवस्था मार्गदर्शन व विशेष कृपा की आवश्यकता होती है। गुरु के प्रति पूर्ण शरणागति होने पर ही मार्गदर्शन प्राप्त होता है। गुरु, ईश्वरादि के प्रति शरणागति, भक्ति और समर्पण राग का ही सुन्दर और सुसंस्कृतरूप है। उनके प्रति आश्रित होना यह सौभाग्य और धन्यता का विषय है। गुरु-शास्त्र के प्रति पूर्ण समर्पण ही लक्ष्य की प्राप्ति का हेतु बनता

वैराग्य – स्वस्थ सम्बन्ध

है। वे हमें शनैः शनैः मुक्ति की दिशा में ले जाते है। जो अत्यन्त सूक्ष्मतत्व वह हम ही, इसी समय, शरीर में अशरीरी आदि रूप होने पर भी हम स्वयं उसे देख नहीं पाते है। इस यथार्थ को गुरु-शास्त्र के आशीर्वाद से देखते है। वे मोह व द्वैत से परे ले जाकर सत्य में जगाने हेतु योगदान दे रहे है। तत्त्वज्ञान उनके आशीर्वाद का फलितरूप है। अतः उनके प्रति कृतज्ञता से युक्त होते है। उनके मार्गदर्शन से बहिर्मुखता के स्वभाव से मुक्त होकर अध्यात्म की ओर सतत बढ़ते जाते है, स्वावलम्बी होते जाते है, अन्ततः मुक्ति प्राप्त होती है।

संसारी बाह्य चीजों का महत्व देखकर उस पर सदैव आश्रित, दीनहीन बना रहता है। अध्यात्म का साधक उसके पीछे आशय, ज्ञान को सूक्ष्मरूप से समझने का महत्व रखकर अपनी अखण्ड, अनन्त, अद्वय सत्ता में जगने की दिशा में यात्रा करता है। सब का योगदान व सब का आशीर्वाद ही स्वतंत्र, स्वावलम्बी और स्वस्थ बनाने हेतु होता है। इस प्रकार ऐसा सम्बन्ध स्वतंत्र स्वस्थ बनाने के लिए, जीवन में महान लक्ष्य के लिए योगदान देते है। गुरु का शरीर यद्यपि प्रधान नहीं, किन्तु उसके माध्यम से ज्ञान व शिक्षादि देने की वजह से उपाधि का भी महत्व होता है। संसारी दृष्टशरीर मात्र को देखता है। कोई भी अभिव्यक्ति नित्य, स्थायी नहीं अतः शाश्वत सुरक्षा नहीं देगी। इन सबका वास्तविक प्रयोजन समझना चाहिए। गुरु, मातापितादि तथा भगवान के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्वावलम्बन स्वतंत्रता में फलित होना चाहिए।

जो तत्त्व सामने, इसी समय होते हुए भी हम देख नहीं पाते है, उपहित को ही अधिष्ठान समझते है। उसे नहीं जानने पर पराधीनता का जीवन होगा। किन्तु गुरु और शास्त्र के प्रति समर्पण से ही अनुगृहीत होकर सत्य में जग पाते है। एवं वीतराग रागात्मक सम्बन्धों का परिपक्वरूप है; जिससे हम स्वतंत्र, स्वस्थ स्वावलम्बी हो। यह अध्यात्मदर्शन की महिमा है। अध्यात्म के अभाव में विरक्ति का अर्थ घटित नहीं हो पाता है। अपने अन्दर जाग्रति हेतु बाहर सब का योगदान व आशीर्वाद देखते है। यह दोषवान नहीं है। शास्त्र, गुरु, ईश, समाज, पंचमहाभूत, देवतादि सब के आशीर्वाद की हमें आवश्यकता है उसे विनम्रता से रियलाइज करें। उनके आशीर्वाद और शिक्षा दिव्य सत्ता में जगाने हेतु है। उनके आशीर्वाद को फलित होता देखने पर ज्ञान के अभिमान से रहित होते है। इस प्रकार आसक्ति का सम्बन्ध अनासक्त करने के लिए, पराधीनता का सम्बन्ध पराधीनता से मुक्त करने के लिए होता है।

.... जीन्दगी जीना सीख गया

मेरी हर नाकामी पर हार ने मुझे गुरुर से देखा,
मैंने भी उसे देख मुस्कुराया।
हार का गुरुर गवांया, फिर मैं नाकाम हुआ
पर तब भी मैं मुस्कुराया।
'तुम क्यों मुस्कुराते हो नाकामी पर भी'
मैं जानता हूं कि मैं नाकाम नहीं कामयाब हुआ हूं,
क्योंकि मैं नाकामी में भी मुस्कुरा पाया।
हार मेरी इन अदाओं पर हार गई,
छोड दिया मेरा पीछा।
मेरी कामयाबी पर मैंने हार को मूड कर देखा
पर वो अपनी जीत पर न मुस्कुरा पाई थी,
और नही अपनी हार पर रो पाई।
और मैं हार जीत की लडाई देख
जिन्दगी जीना सीख गया ।

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

दृग्दृश्यविवेक

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

हृदीव बाह्यदेशेऽपि
यस्मिन् कस्मिंश्च वस्तुनि।
समाधिराद्यस्सन्मात्रात्
नामरूपपृथक्कृतिः।।

जिस प्रकार अपने मन में दृष्टा और दृश्य के विवेक से प्रारम्भ कर समाधि तक की गति हुई, उसी प्रकार बाह्यदेश में भी किसी भी विषय को निमित्त बनाकर सर्वप्रथम दृश्यानुविद्ध समाधि सिद्ध करने हेतु विषय के अन्तर्गत सत्स्वरूपता से नामरूप को पृथक् करना चाहिये।

आचार्य ने पूर्व तीन श्लोकों में दृश्यानुविद्ध, और शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि तथा निर्विकल्प समाधि रूप तीन अन्तःसमाधि की चर्चा करी। यह तीनों दृष्टा अर्थात् साक्षी चेतना से सम्बद्ध है। दृष्टा–दृश्य के विवेक से दृश्य को बाधित करके द्रष्टा की ओर ध्यान मोड़ा गया। उसके उपरान्त अपने पर से दृष्ट उपाधि तथा उसके धर्म का निषेध होकर अपनी साक्षीस्वरूपता अर्थात् चेतनता का अनुभव मैं की तरह से होता है। चेतना कभी भी अपने से पृथक पदार्थ में अनुभव नहीं की जा सकती है।

यद्यपि सच्चिदानन्द स्वरुप आत्मा सर्वव्यापी है, तथापि सब जगह अनुभव नहीं होती है। जहां शुद्ध, सात्विक अन्तःकरण होता है, वहीं पर चिन्मयस्वरूप आत्मा द्रष्टा के रूप में अपरोक्षतः ज्ञात होती है। उक्त अन्तःसमाधि के अभ्यास के माध्यम से अपनी ब्रह्मस्वरूपता में स्थिरता उत्पन्न करते है। अपने आपके साथ बैठने पर हम स्वयं को मुक्त, निर्विकल्प स्वरूप देखते हैं। किन्तु व्यवहार में आने पर यह बाधित होता सा दीखता है। मुक्ति की अवस्था अद्वय की अवस्था है; जब कि अभी अपने से पृथक् दृश्य का अस्तित्व बना हुआ है, जो विचलित करने की सम्भावना रखता है। अतः व्यवहार बोझारूप प्रतीत होता है।

अभी हमने दृष्टा की ही पूर्णस्वरूपता का निश्चय किया है, दृश्य के बारे में निश्चय की अदृढ़ता हमें प्रभावित करती है। जब दृष्टा और दृश्य का भेद खतम होकर स्वयं को दोनों के अधिष्ठानभूत अखण्ड, ब्रह्मतत्त्व जानकर उसमें निष्ठ होते है, तब ही ज्ञान की पूर्णता सिद्ध होती है। अतः दृश्य के भी धरातल पर, बाह्यसमाधि की चर्चा आचार्य करते है।

जिसके बारे में पूर्व श्लोकों में विवेक करके निश्चय किया था, उसी निश्चय की दृढ़ता हेतु बाह्य

दृग्दृश्य विवेक

समाधि का आश्रय लिया जाना है। पूर्व में आचार्य ने बताया था कि समस्त दृश्यजगत में पांच अंश विद्यमान है – अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप। उसमें नाम और रूप मायामय है तथा अस्ति, भाति, प्रिय अंश सच्चिदानन्द ब्रह्म है। किसी भी दृश्य पदार्थ को लेकर उसके नामरूप के अंश को मायामय जानकर उसे बाधित करे। अर्थात् उसकी क्षणिकता, नश्वरता का निश्चय

करके उसे महत्व देना बन्द करें। उसके प्रति महत्व की बुद्धि अपने लिए सुखादि की कल्पना की वजह से की जाती है। किन्तु जब उसकी नश्वरता तथा अपनी चिन्मयी, परिपूर्ण सत्ता का निश्चय होने पर वह हमारे लिए सुखादि का स्रोत नहीं रहा। इस प्रकार नामरूप के प्रति महत्वबुद्धि खतम होने से उसके अधिष्ठान का संज्ञान होता है। नामरूप और उसके अधिष्ठानभूत सत्ता का विवेक करके नामरूप का मिथ्यात्वनिश्चय को दृढ़ करते है और उसके अधिष्ठानरूप सत्ता की ओर ध्यान ले जाते है। इस प्रकार बाह्य समाधि का आश्रय लिया जाता है।

जिस प्रकार दृष्टा के धरातल पर सविकल्प, दृश्यनुविद्ध और शब्दानुविद्ध समाधि का आश्रय लिया था, उसी प्रकार यहां पर भी पहले दृश्य विषय का विवेक करके निश्चय करते है। उसके उपरान्त शास्त्र द्वारा प्रयुक्त लक्षणाओं पर विचार करके उसकी उसकी ब्रह्मस्वरूपता का निश्चय किया जाता है। उसके सतत अभ्यास से अब नामरूप की प्रतीति बने रहने पर भी उसके ब्रह्मस्वरूपता के निश्वय में दृढ़ता होती है। इस प्रकार तीनों समाधि के अभ्यास से स्वयं को सर्वाधिष्ठानरूप तत्व जानकर उसमें स्थित होते है। ऐसी निष्ठा हो जाने पर दृश्य हमारी पूर्णस्वरूपता को बाधित करने में समर्थ नहीं होता है। अतः इस बाह्यसमाधि का भी अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

गीता अध्याय : 4

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

गीता के चौथे अध्याय का नाम ज्ञानकर्म संन्यास योग है। इस अध्याय का आरम्भ भगवान के वचन से होता है। यह अध्याय कर्मक्षेत्र में कमलपुष्प की तरह असंग होकर, कर्मयोगी बनकर जीने का ज्ञान देता है। साथ ही भगवान अपने अवतार के रहस्य को उद्घाटित करते हैं। पूर्व अध्याय के कर्मयोग विषय का ही सातत्य यहां प्रतीत हो रहा है। भगवान बताते हैं कि हमने तुमको अव्यययोग प्रदान किया, अव्ययवयोग एक अव्यय, नित्य शाश्वत तत्त्व की ओर ले जाता है। जब किसी कार्य को करते हुए ईश्वर अभिमुख होने लगे वही योग बन जाता है। इस अव्यययोग की स्तुति करते हुए भगवान कहते हैं कि, इस ज्ञान को हमने सृष्टि के आदि में सूर्य को, सूर्य ने मनु को तथा मनु ने इक्ष्वाकु को बताया। इस प्रकार परम्परा से इस ज्ञान को अनेकों राजर्षियों ने जाना; किन्तु समय व्यतीत होने पर यह योग मानो नष्टप्राय हो गया। यद्यपि ज्ञान का कभी नाश नहीं होता है, किन्तु इस परम्परा में अनेकों स्वार्थ के वशीभूत राजाओं की वजह से लुप्तप्राय हो गया। उसी योग को हमने तुम्हें बताया है। क्योंकि तुम 'भक्तोऽसि मे सखा च इति'! तुम हमारे भक्त भी हो और मित्र भी हो। भगवान अर्जुन के साथ के अपने सम्बन्ध को परिभाषित करते हुए एक शिष्य की परिभाषा मानों दे रहे हैं। जिस सम्बन्ध में भक्त की तरह आदर, भक्ति और श्रद्धा हो, साथ ही मित्र की तरह प्रेम, खुलापन, निःसंकोच हो, वहीं पर गुरु-शिष्य के सम्बन्ध स्थापित होते है। ज्ञानसंवाद ऐसे सम्बन्ध में ही सम्भव तथा फलित होता है।

यह सुनकर अर्जुन के मन में जिज्ञासा हुई, जो कि उन्होंने भगवान के समक्ष अपने निःसंकोच होकर श्रद्धा का परिचय देते हुए पूछा कि, 'आपका जन्म तो अभी हुआ है, और सूर्य तो सृष्टि के आदि में थे। आपने यह ज्ञान उन्हें दिया यह हम कैसे जानें?' अर्जुन के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान अपने अवतार होने का रहस्य प्रकट करते हैं।

भगवान बताते हैं कि, अर्जुन! हमारे और तुम्हारे अनेकों जन्म हो चूके हैं। उसे हम जानते हैं, तुम नहीं जानते हो। वस्तुतः हम अजन्मा, अव्ययस्वरूप तत्त्व है। समस्त भूतों की हम ही आत्मा है। जब भी धर्म अधर्म से अभिभूत हो

जाता है, तब प्रत्येक युग में धर्ममार्ग का अनुसरण करनेवालों की रक्षा हेतु तथा अधर्म के विनाश हेतु अपनी मायाशक्ति धारण करके अवतरित होते है। यद्यपि हमारा जन्म होता है, हम धर्म की संस्थापना का कर्म करते हैं; किन्तु हमारा जन्म और कर्म दिव्य होता है। क्योंकि हम अजन्मा स्वरूप होने से वसतुतः हमारा जन्म ही नहीं होता है। हमारे इन जन्म और कर्म का तत्त्वतः जो रहस्य जानता है वह इन देहादि उपाधि की संकुचिता से मुक्त होकर पुनः बन्धन को प्राप्त नहीं करता है, किन्तु मुझे ही प्राप्त कर जाता है। वस्तुतः हर जीव की वास्तविकता यही दिव्य, अजन्मा तत्त्व है, जो समस्त जन्मादि विकारों से रहित है। अपने अज्ञान की वजह से स्वयं को नहीं जान रहे है, इसलिए अपने आपको अपूर्ण, संकुचिता से युक्त मानकर उसे दूर करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार कर्ता–भोक्ता जीव बनकर अनेकों कर्म करता है, और कर्म तथा कर्मफल के बन्धन में आता है। जो भी रागद्वेष, काम, क्रोधादि से रहित होकर हमारे प्रति शरणागत होता है, वह अपने स्वस्वरूप के ज्ञान से युक्त, अपने जन्मादि की दिव्यता जानकर, परं पवित्र होकर, अपने अज्ञान और तज्जनित समस्त दोषों से मुक्त होकर हमें प्राप्त कर जाता है।

हर जीव ज्ञान के लिए प्रेरित नहीं होता है, क्योंकि इस जगत में हर व्यक्ति अज्ञान के कारण किसी न किसी धारणा से युक्त होता है, उनमें साधारणतः बहिर्मुखता प्रधान होती है। अतः बाहर के विषयों में ही सुखबुद्धि से प्रेरित होकर कर्म करता है। उसके लिए अनेकों देवता आदि का यजन करता है, और बाहरी फलभोग रूप कर्मजनित, अस्थायी सिद्धि को प्राप्त करता है। इससे उसकी यात्रा अनवरत चलती रहती है। कर्म का सामर्थ्य व अधिकार मात्र मनुष्य के पास ही होता है। अतः उसके गुण और कर्म के अनुरूप हमने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार प्रकार के वर्णों की

व्यवस्था करी हुई है। इसीसे समस्त सृष्टि सुचारुरूप से संचालित होती है। मनुष्यलोक में ही कर्म की स्वतंत्रता होती है, कर्तृत्व का अभिमान होता है, अतः यह व्यवस्था मनुष्यलोक तक सीमित है। भगवान कहते हैं कि यद्यपि हमने ही यह व्यवस्था की हुई है, तथापि हम उसके कर्ता होते हुए भी अकर्ता है। हम इस कर्म से लिप्त नहीं होते है। क्योंकि हम उसके कर्मफल से निरपेक्ष और अनासक्त है। यही हमारे कर्म की दिव्यता का रहस्य है। जो भी इस प्रकार से कर्म करता है, वह योगी बन जाता है। 'अर्जुन! इस प्रकार से पूर्व-पूर्व में अनेकों लोगों ने कर्म किएं और कर्म के बन्धन से मुक्त हुए अतः तुम भी इसी प्रकार से कर्म करों।'

जो कर्म की दिव्यता का रहस्य जानता है वह कर्म में अकर्म को तथा अकर्म में कर्म को देखता है। अर्थात् देहादि उपाधि से हो रहे कर्म के पीछे स्वयं को अकर्ता जानता है, कि हमारी सन्निधि मात्र से समस्त चेष्टाएं हो रही है। तथा जो कोई निश्चेष्ट होकर बैठ़ा है, तो उसके पीछे चेष्टाओं को रोकने के संकल्परूप कर्म को देखता है। वही मनुष्यों में बुद्धिमान, जगा हुआ व्यक्ति है। उनके लिए कोई भी कर्तव्यता शेष नहीं रह जाती है। उनके समस्त कर्म मानों ज्ञान रूप अग्नि में दग्ध हो गए है। वह नित्य तृप्त है, उसकी तृप्ति किसी भी वस्तु, व्यक्ति वा परिस्थिति पर आश्रित नहीं है। उनके द्वारा हो रहे कर्म स्वकेन्द्रित कामना और संकुचिता से रहित होने से वह कर्म करते हुए भी मानों कुछ भी नहीं करता है। कर्तृत्व के अभिमान से मुक्त है। वे ईश्वरेच्छा से प्राप्त में संतुष्ट, समस्त द्वन्द्वों से अप्रभावित रहते हुए लोककल्याण हेतु कर्म करते भी है, तथापि उसके बन्धन से मुक्त रहता है।

जो अपने स्वरूप ज्ञान में स्थित, कर्मफलासक्ति से मुक्त होकर यज्ञभाव से कर्म करता है, उनके समस्त कर्म समाप्त हो जाते है। कर्म के दोषों से मुक्त होकर ज्ञान की पात्रता हेतु यज्ञभाव से युक्त होकर कर्म करना चाहिए। यह चित्तशुद्धि का हेतु बनकर सूक्ष्म ज्ञान के लिए समर्थ बनाता है।

वेदों के कर्मकाण्ड में बताए गए यज्ञ का अभिप्राय यदि समझते है, तो हमारे समस्त कर्म यज्ञ बन सकते है। यज्ञकर्म में यज्ञवेदी का निर्माण करके उसमें अग्नि के रूप में परमात्मा का आवाहन किया जाता है, और उनके प्रति आहुति समर्पित

की जाती है। यज्ञ निःस्वार्थभाव से, ईशवरार्पण बुद्धि से किए जानेवाले कर्म को बोलते है। यहां भगवान बताते हैं कि प्रत्येक कर्म व चेष्टा में इस यज्ञभाव का समावेश किया जा सकता है। जब हम विषयों को ग्रहण करते है तो इन्द्रिय रूप अग्नि में मानों विषयों की आहुति दे रहे हैं, जब इन्द्रियों का संयम करते है तो मानों इन्द्रियों की संयमरूपा अग्नि में आहुति दे रहे हैं। श्वास-प्रश्वास की क्रिया, भोजन, द्रव्ययज्ञ, स्वाध्याय, तप, ज्ञान आदि सब यज्ञ बन सकता है - यदि उन सबको अपने स्वार्थ हेतु नहीं करते हुए ईश्वरार्पणबुद्धि से करते हैं। कर्म में इन सब का समावेश किया जाता है। जो इस प्रकार प्रत्येक कर्म में यज्ञभाव का समावेश करके प्रत्येक कर्मफल में प्रसादबुद्धि से युक्त होता है; वह चित्तशुद्धि रूप प्रसाद को प्राप्त करता है, उनमें ही परमात्मा आदि विषयक जिज्ञासा का जन्म होता है। भगवान बताते हैं कि, इस तत्त्व को जानने के लिए तत्त्वदर्शी ज्ञानवान गुरु का उपसदन करें। उनके चरणों में श्रद्धा से समर्पित व सेवाभाव से युक्त होकर उनके समक्ष तत्त्वविषयक जिज्ञासा रखने पर वे अवश्य ज्ञान प्रदान करते हैं। इस प्रकार अन्त में ज्ञानयज्ञ सम्पन्न होाता है, जिसमें अपने अज्ञान व तज्जनित धारणाओं की विवेक की अग्नि में आहुति दी जाती है। यह ज्ञानयज्ञ सर्वश्रेष्ठ यज्ञ माना गया है। क्योंकि समस्त कर्म की समाप्ति ज्ञान में ही होती है। जहां अपने आपको संकुचित कर्ता-भोक्ता जीवभाव से रहित पूर्णस्वरूप परमात्मा जान लेते है। बीज समेत समस्त कर्म ज्ञान की अग्नि में भस्मीभूत हो जाते है। इसलिए अर्जुन! श्रद्धा से युक्त होकर यज्ञभाव का समावेश करों, जिसका लक्ष्य इस ज्ञान रूप तलवार से समस्त भवबन्धन का छेदन होता है। श्रद्धापूर्वक यज्ञभाव का आश्रय लेने पर कितना भी दुराचारी हो, वह भी सद्गति को प्राप्त होता है। अन्ततः परंब्रह्म रूप परं शान्ति की अवस्था को ही प्राप्त कर जाता है।

गीता अध्याय : ४
(ज्ञानकर्म संन्यास योग)

श्लोक संख्या : ४२

अर्जुन द्वारा : १

भगवान द्वारा : ४१
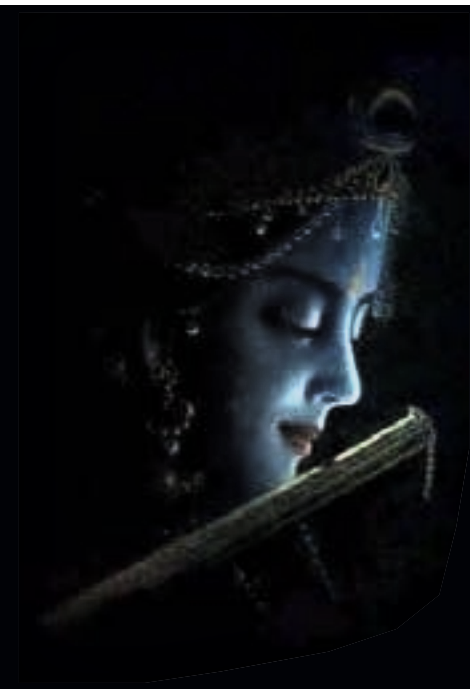
विभूति दर्शन

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—१०—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

श्री लक्ष्मण चरित्र

जनकपुर यात्रा में नगरदर्शन के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों भाई महाराज श्री जनक की वाटिका में पुष्प-चयन के लिए जाते हैं। पुष्पवाटिका में लक्ष्मण की भूमिका सर्वथा अनोखी है। सत्य तो यह है कि जो तेजोमयी मूर्ति जनमानस में प्रतिष्ठापित है, उसे दृष्टिगत रखकर विचार करने पर पुष्पवाटिका के लक्ष्मण को पहचानना भी कठि़न लगता है। लक्ष्मण सेवा और शौर्य के साकार विग्रह हैं। पर सुकुमार श्रृंगार के इस प्रसंग में लक्ष्मण की उपस्थिति हर दृष्टि से अटपटी प्रतीत होती है। एक मित्र अपने मित्र के समक्ष श्रृंगारिक भावना की चर्चा करे तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता, पर बड़े और छोटे भाई के बीच इस प्रकार के वार्तालाप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर जिस अवतार का मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्मरण किया जाता हो, उसके द्वारा इस प्रकार का कार्य तो और भी अधिक आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। सत्य तो यह है कि इस प्रसंग के माध्यम से दोनों के सम्बन्धों की असीमता को हृदयंगम किया जा सकता है। लोकदृष्टि से भले ही उन दोनों को किसी सम्बन्ध विशेष की सीमा में बांधा नहीं जा सकता। 'मोहिं तोहि नाते अनेक मानिए जो भावै' की समग्र सार्थकता यहीं चरितार्थ होती है।

पुष्पवाटिका में सीताजी के आभूषणों की ध्वनि राघव के कानों में प्रविष्ट होकर जिस रस का संचार करती है, वही उनके मुख में कविता के बोल बनकर प्रवाहित होती है। कवि को श्रोता चाहिए। यही अपेक्षा राघव को भी थी। पर श्रोता ढूंढ़ने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं थी। लक्ष्मण से बढ़कर इसका अन्य कोई उपयुक्त पात्र उन्हें प्रतीत नहीं हुआ। प्रभु को प्रतीत हो रहा था कि जैसे काम विश्वविजय का संकल्प लेकर वाद्य बजाता हुआ आक्रमण के लिए आ रहा है। वे अपने इस मनोभाव को लक्ष्मण के समक्ष रख देते हैं। लक्ष्मणजी प्रभु श्रीराम की भावना को अच्छी तरह समझते हैं। किन्तु पूरे पुष्पवाटिका प्रसंग में मौन धारण किए रहते हैं। धनुषयज्ञ में अपनी गर्जना से ब्रह्माण्ड को कंपा देनेवाला पुष्पवाटिका में चुप क्यों है; यह जिज्ञासा अस्वाभाविक नहीं है। विचार करने पर लक्ष्मण के व्यक्तित्व का ऐसा पक्ष सामने आता है, जो सर्वथा अनुपमेय है। वे एक साथ दो विरोधी प्रकार की भूमिकाएं सम्पन्न कर रहे हैं।

एक रसिकता के साथ रस के भोक्तापन की आकांक्षा के अभाव की स्थिति कल्पनातीत

श्री लक्ष्मण चरित्र

प्रतीत होती है। सौन्दर्य की कमनीय मूर्ति का वर्णन सुनते हुए व्यक्ति के मन का रससिक्त हो जाना स्वाभाविक है। पर कितनी कठ़िन भूमिका है लक्ष्मण की। आभूषणों के रुन–झुन में राघव को कामवाद्य सुनाई देता है, क्या लक्ष्मण स्वयं को उस मनोमयी भूमिका से एकाकार कर सकते हैं! इतना ही नहीं मिथिलेशनन्दिनी की दिव्य सौन्दर्य राशि को सामने देखकर कौशलेन्द्र पुनः लक्ष्मण का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करते हुए उनका परिचय देते हैं। क्या जनकनन्दिनी के अनुपम रूप को लक्ष्मण ने दृष्टि उठाकर देखा? उनके अन्तःकरण पर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई, इसका कोई स्पष्ट संकेत गोस्वामीजी नहीं देते हैं, किन्तु लक्ष्मण के दिव्य चरित्र पर दृष्टि रखनेवाला अध्येता यह समझ सकता है कि एक साथ रस के अनुभविता और उससे पूरी तरह असम्पृक्त भी हैं। राघव का सुख ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है। अतः उनके अनुराग में आनन्दित होना उनके लिए स्वाभाविक है। पर वे एक ऐसे रसिक भ्रमर की भांति हैं, जो राम–पद–पद्म–मकरन्द का ही पान करते हैं; जिनके लिए श्रृंगार रस चम्पकवाटिका के समान है। अतः वह स्वतः इस रस के भोक्ता नहीं बन सकते। इस पृष्ठभूमि में कौसलेन्द्र द्वारा श्रृंगारमयी कविता को सुनकर मौन रह जाना स्वाभाविक ही है। इस मौन के माध्यम से वे भी राघव की दिव्य रसानुभूति में सहायक ही बनते हैं। निरन्तर शौर्य और तेजस्विता की भाषा बोलनेवाले लक्ष्मण मौन रहकर भी बहुत कुछ कह जाते हैं।
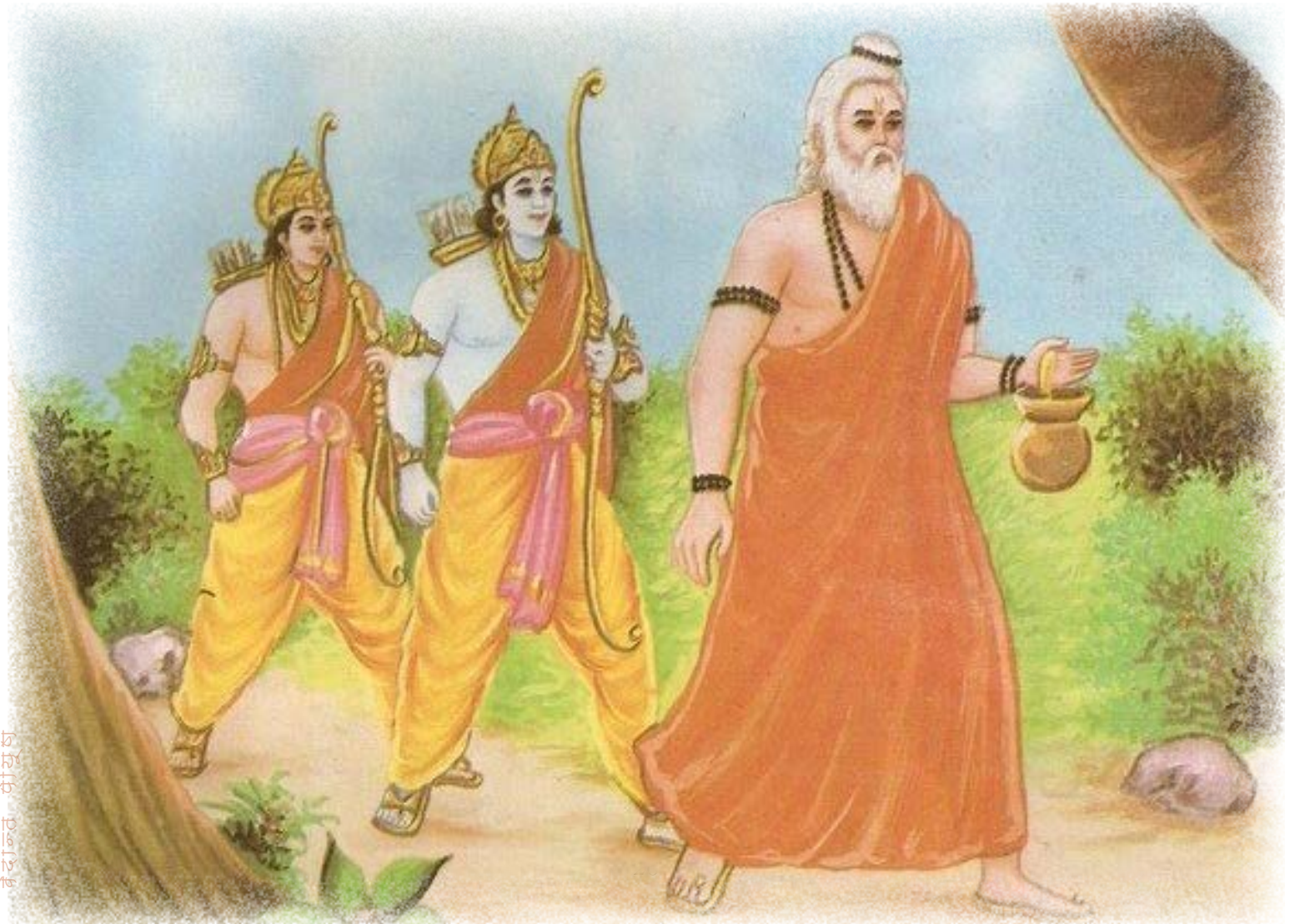
जिन्दगी में हर तरफ अमराइयां हैं।
हम अगर नादान हैं, तन्हाईयां हैं।।
आदमी जब भूलता अपना वजूद।
बदनूमा दामन है या रूवाईयां हैं।।
रोशनी की इक किरण को चूम ले,
हर लहर में ढेर सी पुरवाईयां हैं।।
उत्सवों के बाद सन्नाटा रहे,
चन्द घण्टों की खुशी शहनाईयां हैं।।
दूर आकाश में देखो जरा,
सांझ की बिखरी हुई परछाईयां हैं।।
जिन्दगी जद्दो जहद में कैद है,
ढूंढकर देखा बहुत गहराईयां हैं।।
जीने का अगर अन्दाझ सीख लिया तूनें,
तो जीन्दगी का सफर मस्ती का खजाना है।

—१४—

ऋषीकेश
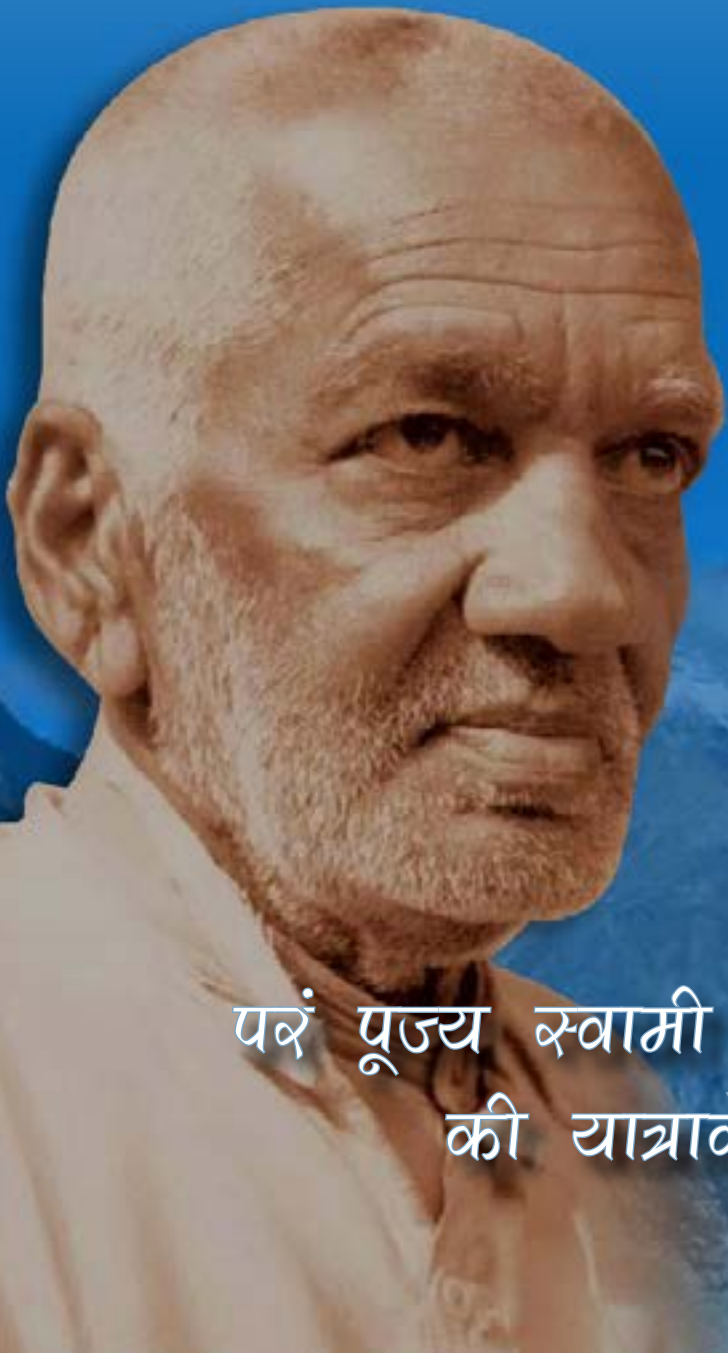
परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण
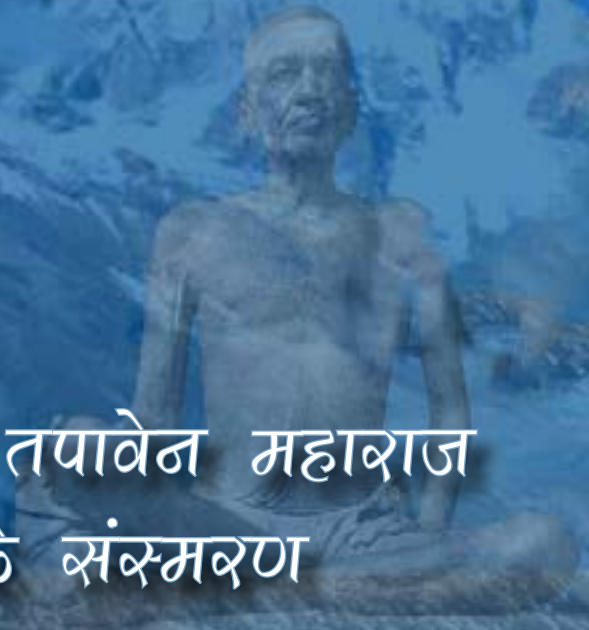
हृषीकेश से मैं ज्यादातर उत्तरकाशी के लिए प्रस्थान किया करता था। हृषीकेश से सौम्यकाशी की ओर के उस अति घने और अधिक रमणीय हिमालय मार्ग को देखकर यदि पाठक खुश होना चाहते हैं तो लीजिएं, उधर की ओर प्रस्थान करके मेरे पीछे़ पीछे़ चलते आइयें। बम्बई, पैरिस, लंदन आदि नगरों की प्रासाद पंक्तियों से परिवेष्टित, बहुत से आडम्बरों से संकुल, कलरवों से मुखरित और वैद्युत दीपमालाओं से दैदीप्यमान राजमार्गो में भी जो सुख नहीं मिलता, वह सुख इन हिमगिरि सरणियों में मिलता है। इन पर चलने के लिए सभी पाठक उन्मेष के साथ मेरे पीछे़ आएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।
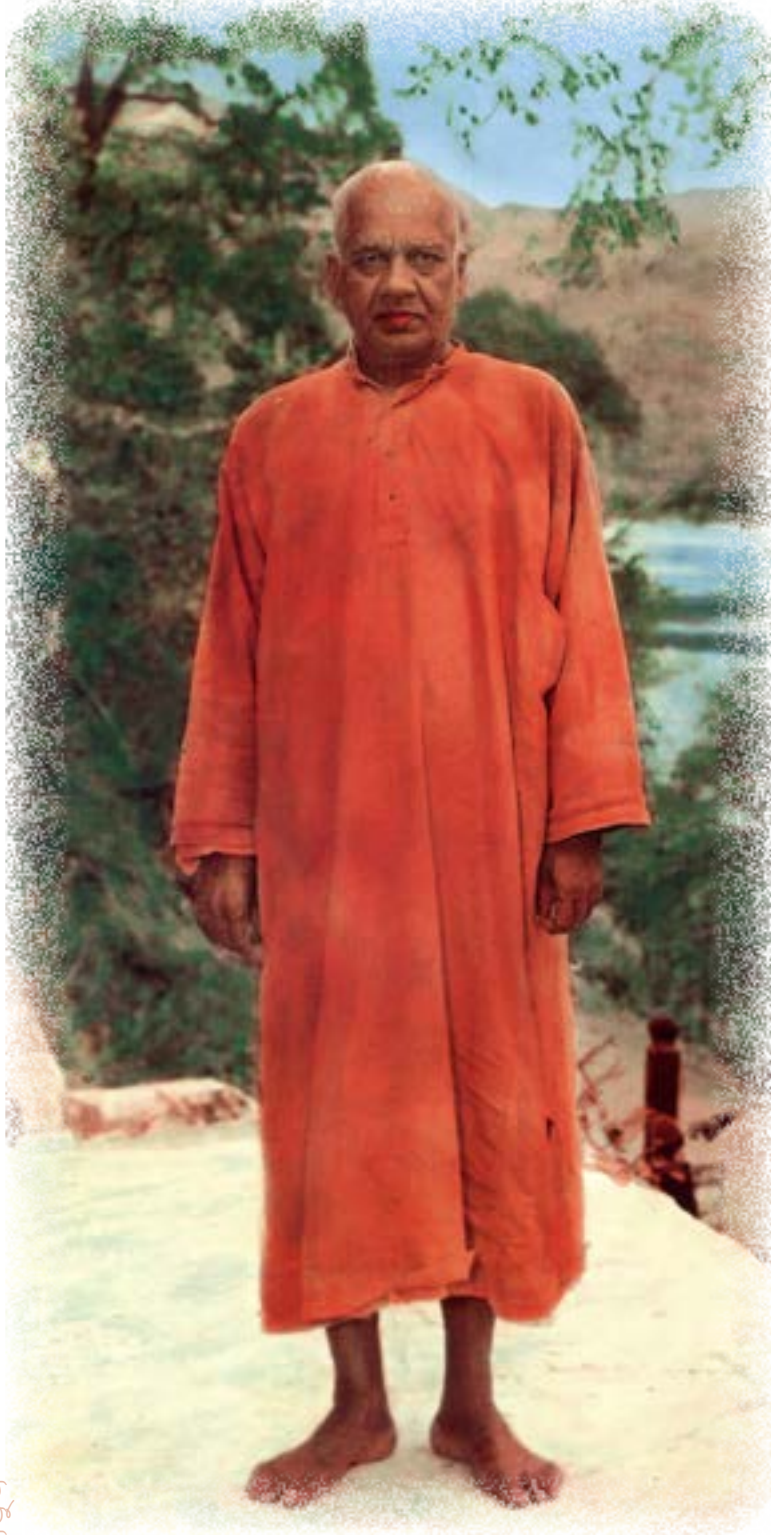
हृषीकेश सौम्यकाशी की और मुख्यतः तीन मार्ग है। उनमें सबसे सरल तथा मेरे लिए सबसे अधिक परिचित मार्ग से हम यात्रा करेंगे। हृषीकेश भूमि से पश्चिमोत्तरी दिशा में जानेवाले रास्ते से कुछ उपर की और चढते जाएँ तो झिल्ली झंकारनाद से निनादित गम्भीर वन का आरम्भ होता है। वनान्तर में प्रविष्ट होकर एक दो मील समतल भूमि पर चलने के बाद फिर उँचे पहाड आ जाते है। और इसलिए चढाई भी शुरू हो जाती है। पर पहाडों के पार्श्वभाग भी वनों से आच्छादित बने रहते है। विभिन्न भाँति की विटपियों, वल्लियों और गुल्मों से भरी पूरी निबिड वनराजि का सौंदर्य व गांभीर्य न्यूनाधिक भाव के बिना पर्वत के शिखर तक एक रूपसे विराजमान है।

जीवन्मुक्त

अहो, कितना रमणीय वन है! कृत्रिम सुन्दरता तो क्षणिक होती है, पर अकृत्रिम सुन्दरता अगर होती है, वह मानवकर या मानवबुद्धि से बिलकुल असम्बद्ध, ईश्वर के ही हाथों निर्मित सौंदर्य संपत्ति ऐसे वनान्तरों को छोड और कहीं संपूर्ण रूप से प्रकट नही होती। सौंदर्यानुभूति का आनंद ही नही, बल्कि बहुमुखी ईश्वरीय लीलाओं के प्रत्यक्ष वीक्षण का एक असाधारण सुख भी यहां भरा रहता है। सब प्रकार के लोकव्यवहार यहां चित्रित से दिखायी देते है। समाचार पत्रों को पढ़े बिना ही यहां खड़े होकर चारों और देखनेवाले एक बुद्धिमान् की बुद्धि से संसार के सभी समाचार समा जाते हैं। लीजिएं! मर्कट–यूथ का नेता अनेक मर्कट युवतियों के साथ विहार कर रहा है कि इतने में एक दूसरा बडा सा बंदर इन मर्कटियों के पास पहुच जाता है, और इनका प्रियतम उसके साथ महासंग्राम करके वनान्तर को थर थर कंपा देता है। देखिएं! दूसरी और एक और समूह किसी खाद्य वस्तु के लिए जर्मनयुद्ध को भी पीछे करते हुए भयानक लड़ाई में लगा है। आपस में दाँत दिखाते, साहस के साथ लड़ते, कुछ डरकर भागते और कुछ उनके पीछे दौड़ते कोलाहल मचा रहे है। अहो! कामिनी और काँचन सब कहीं कलह के ही कारण है। ये रक्तमुख मर्कट बड़े धूर्त होते है। लीजिएं, इन कृष्णमुखों के समूह का निरीक्षण कीजिएं। वे बड़े भक्त तथा शान्त होते है। दूर उंचे वृक्षों की शाखाओं पर झगड़ा अथवा अधिक चपलता किये बिना वे ईश्वरचिन्तकों के समान चुपचाप बैठे है।

Vibhooti Darshan

पौराणिक गाथा

राजा नहुष का पतन

राजा नहुष पृथ्वीलोक पर धर्मात्माओं में से एक माने जाते थे। इनहोंने अनेकों यज्ञ-यागादि, तपस्, दानादि साधना की थी। उसके अलावा प्रजा का संरक्षण बहुत करुणा, उदारता और धर्ममय तरीके से किया करते थे। उनकी प्रसिद्धि तीनों लोक में प्रसारित थी। एक बार स्वर्ग के राजा इन्द्रदेव के द्वारा ब्रह्महत्या हो गई, इस वजह से उन्हें इन्द्रपद त्यागना पड़ा। इन्द्र के पद को रिक्त नहीं रखा जा सकता, अतः उचित पात्र की खोज करने पर राजा नहुष सब से उपयुक्त पात्र प्रतीत हुएं। समस्त ऋषियों, देवताओं तथा त्रिदेव की सहमति से उन्हें इन्द्रपद पर अभिषिक्त किया गया।

आरम्भ में इन्द्रपद की गरिमा के अनुरूप उन्होंने बहुत धर्ममय तरीके से निर्वाह किया। अपने कर्तव्यों का पालन बहुत निष्ठापूर्वक करने लगें। किन्तु जैसे जैस स्वर्ग, उसके भोगादि से परिचित होते गएं, वैसे वैसे उनमें विषय उपभोग की इच्छाएं प्रबल होती गई। और उनका जीवन भोगपरायण होने लगा।

एक बार उनका ध्यान इन्द्रपत्नी साध्वी शचि पर पड़ा। उनको देखकर उनके मन में कामवासना तीव्रता से जाग्रत हो गई। जब शचि को यह ज्ञात हुआ तो वह अपने संरक्षण हेतु देवगुरु बृहस्पति के पास पहुंची। और उनसे अपने सतित्व की रक्षा हेतु निवेदन किया। देवगुरु बृहस्पति ने उनको आश्वस्त किया और अपना संरक्षण प्रदान किया। यह बात जब नहुष को ज्ञात हुई, तो उन्होंने बृहस्पति को आदेश किया कि हम इन्द्रपद पर आसीन स्वर्ग के राजा है, इसलिए आपको मेरा आदेश मानते हुए शचि को हमें सोंप देना चाहिए। बृहस्पति ने शचि के साथ कुछ मंत्रणा करी। जिससे कि शचि न राजा नहुष को संदेश भेजा कि, हम आपके प्रति प्रत्यर्पण करने को तैयार हूं। पर हमारी एक शर्त है! आज आप स्वयं हमारे महल में पालखी पर सवार होकर पधारें और आपकी पालखी सप्तर्षियों के द्वारा उठाई जाएं तो हम समर्पण हेतु उपलब्ध होंगे।

नहुष ने शर्त स्वीकार करी और सप्तर्षियों द्वारा पालखी उठवा कर शचि के पास जाने हेतु प्रस्थान किया। कामवासना की तीव्रता और अधीरता से अन्धे तथा मद के नशे में चूर नहुष अपना विवेक खो बैठें। उसने सप्तर्षियों को तेजी से चलने का आदेश दिया। अधीरता के मारे अगत्स्य ऋषि को लात मार दी। उस पर क्रोधित होकर अगत्स्य ने उन्हें हजारों वर्ष तक सर्पयोनि में पड़े रहने का श्राप दे दिया। नहुष तुरन्त ही सांप बनकर पृथ्वी पर गिर पड़ें। यहां इन्द्र ने भी अपना प्रायश्चित्त पूरा किया और पुनः देवराज पद पर आसीन हो गएं।

यह सत्य ही है कि कामना के तीव्र आवेग को रोका नहीं गया और उसमें प्रवाहित होने पर निश्चितरूप से विनाश की दिशा में यात्रा होती है।

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light in the lives of all with the Knowledge of Self

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम परिवार

२५ अप्रैल २०२१

जगना और सोना

आश्रम सत्संग हाल

अन्य समाचार

२४ मई २०२१
विडियो रेकार्डिंग

वेदान्त आश्रम
इन्दौर

अन्य समाचार

१७ मई २०२१

शंकराचार्य जयन्ति

आश्रम समाचार

श्री आदि शंकराचार्य जयन्ति

१७ मई २०२१

पूजा एवं आरती

शंकराचार्य द्वार

आश्रम समाचार

जन्मदिन के शुभाशीष

पू. गुरुजी से

आशीर्वाद लेते हुए

दित्या माउकर

आश्रम समाचार

जन्मदिन के शुभाशीष

दित्या माउकर

बच्चों की प्रतिदिन आरती में उपस्थिति

श्री गंगेश्वर महादेव मन्दिर

आश्रम समाचार

श्री गंगेश्वर महादेव अभिषेक

भरत का जन्मदिन

जन्मदिन की शुभाशीष

२० मई २०२१

आश्रम समाचार

जन्मदिन के शुभाशीष

श्री गुरुभ्यो नमः

आश्रम के महात्माओं को भिक्षा

आश्रम समाचार

वेदान्त आश्रम

धन्यता का गीत गाते हुए
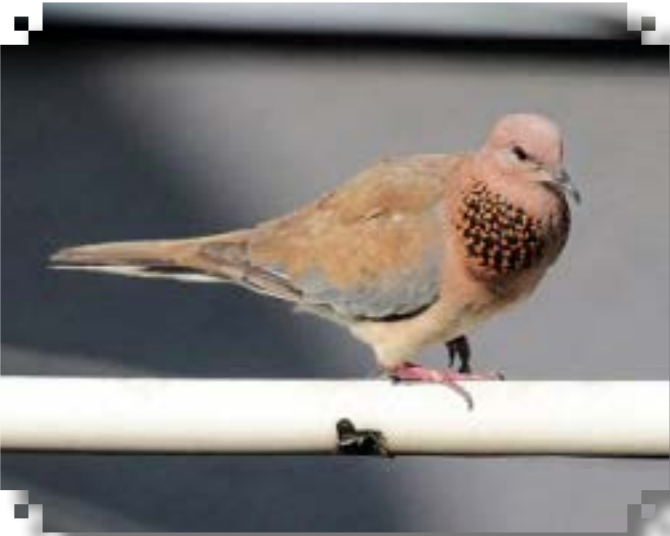
पुरुष एवेदं सर्वम्

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- Eksloki Pravachan
- Eksloki Chanting
- Sampoorna Gita Pravachan
- Kathopanishad Pravachan
- Shiva Mahimna Pravachan
- Bhaja Govindam
- Hanuman Chalisa
- Prerak Kahaniya

Audio Pravachans

- Prerak Kahaniya
- Sampoorna Gita Pravachan

Vedanta & Dharma Shastra Group on FaceBook

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh - June '21

Vedanta Piyush - May '21

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

२६ जून २०२१ . सायं ७.०० बजे

ओनलाईन मासिक सत्संग

प्रार्थना एवं प्रवचन

आश्रम परिवार के सदस्यों के लिए विशेष

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

प्रतिदिन प्रातः ७.०० बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन (शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी